19

शुकनासोपदेश–लक्ष्मी के दुष्प्रभाव–1

प्रस्तावना

इस पाठ में शुकनासोपदेश के 'आत्मविडम्बनञ्च' से लेकर स्वभवनमाजगाम' तक के अंश का वर्णन हैं। विद्या विनोद के लिए, धन मद के लिए, दुष्ट का धन दूसरों को पीड़ा के लिए होता है। श्री अर्थात् लक्ष्मी के प्रभाव से राजा अपने को ईश्वररूप में मानते हैं। वे सोचते है कि वे साक्षात् शिवस्वरूप हैं। वे गुरू, ज्येष्ठ व शिष्ट जनों के उपदेश को स्वीकार नहीं करते हैं। जो उनके गुणकीर्तन को करते हैं, सम्पत्ति को लूटने से राजा ठगे जाते है। उनको ही राजा धनादि से पोषित करते हैं और सभी प्रकार के प्रयोजन को पूरा करते हैं। इससे राजा कभी भी स्वयं की उन्नति, और राज्य की उन्नति को धारण करने में समर्थ नहीं होते है। इस कारण से प्रधानामात्य शुकनास चन्द्रापीड को सचेत करता है कि इस मार्ग पर प्रवृत नहीं होना चाहिए। अपने राज्य एवं पिता की उन्नति के लिए चिन्तन करना चाहिए। जो राज्य जीते उनको फिर से जीतना चाहिए और नवीन राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए। राज्य, राज्यस्थ और राजाश्रितों के मंगल के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ महाकवि वस्तुत: उपदेश प्रदान करने के बाद प्रजा के प्रति कैसे आचरण करना चाहिए, कैसे प्रजा पर शासन करना चाहिए और कैसे सेवकादि के साथ व्यवहार करना चाहिए इत्यादि का शुकनास के मुख से वर्णन करते हैं।

उद्देश्य–

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- उपदेशों के पालन से कैसे राज व्यवस्था सम्यक् रूप से चलती है इसे समझ पाने में;
- राजाओं द्वारा कैसे प्रजा के प्रति आचरण करना चाहिए इसे जान पाने में;

- राजाओं के सदाचरण से प्रजा राजाज्ञों का पालन करती है इसे समझ पाने में और;
- पाठस्थ पदों का अन्वयार्थ व समास को समझ पाने में।

19.1 मूलपाठ

आत्मविडम्बनाञ्चानुजीविना जनेन क्रियमाशामभिनन्दन्ति। मनसा देवताध्यारोपणविप्रतारणा सम्भूतसम्भावनोपहताश्चान्त: प्रविष्टापरभुजश्यमिव आत्म-बाहुयुगलं सम्भावयन्ति। त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशंकन्ते। दर्शनप्रदानमपि अनुग्रहं गणयन्ति, दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति, सम्भाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति, आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते, स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्य:, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्च्चयन्त्यर्च्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्। अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने।

व्याख्या

अनुचर या सेवकों द्वारा की गई विडम्बना अर्थात् अविद्यमान गुण के आरोपरूप वञ्चना करें तो वे राजा उनका भी अभिनन्दन करते हैं।

अपने मन में देवतात्व संस्थापन रूप मिथ्या विचार से उगाये जाने के कारण जो धारणा उत्पन्न होती है उसी से ही धन राजाओं की बुद्धि विनष्ट हो जाती है। अतएव मेरी दो भुजाओं के भीतर दो भुजाएं और छिप कर छुपी हुई हैं। ऐसा समझकर वे राजा लोग मानो अपने को विष्णु के समान मानते रहते हैं।

अपने ललाट में एक तीसरा नेत्र त्वचा से ढका हुआ है ऐसी आंशका करके अपने को शिव अर्थात् महेश्वर के समान समझते हैं।

वे अपना दर्शन देना भी मानो बड़ा अनुग्रह करने में गणना करते हैं। दूसरों की ओर देखना मानो उपकार कर रहे हैं ऐसी स्थापना करते हैं। वार्तालाप करना भी विभाग पूर्वक दातव्य पदार्थ या द्रव्य को दान के मध्य में मानते हैं। अर्थात् देने के स्थान पर बातचीत करने से ही पूर्ण कर देते हैं। आज्ञा को ही मानो वर प्रदान कर दिया ऐसा समझते हैं। स्पर्श करना भी मानो पवित्रता का कारण समझते हैं। अर्थात् किसी को स्पर्श कर दिया तो उसे पवित्र कर दिया ऐसा विचार करते है।

मिथ्या या झूठे माहात्म्य के अहंकार से भरे हुए वे राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं, ब्राह्मणों का पूजन नहीं करते हैं, मान्य जनों का सम्मान नहीं करते हैं, पूजनीय लोगों की पूजा नहीं करते हैं, नमस्कार करने के योग्य जनों को नमस्कार नहीं करते हैं, एवं गुरुजनों को देखकर भी उठ खड़े नहीं होते हैं। अर्थात् अभिवादन योग्य आचार्य, गुरुजन, पुरोहित आदि पदग्रहण नहीं करवाते हुए सत्कार नहीं करते हैं।

ये विद्योपार्जनादि निरर्थक परिश्रम कर विषय संभोग अर्थात् कामिनी आदि भोग जनित सुख को दूर किये हैं ऐसा समझकर विद्वानों का उपहास करते रहते हैं। ये वृद्धावस्था के कारण बुद्धि की अस्थिरता द्वारा कितने प्रलाप करते है ऐसी भावना समझकर वृद्धों के उपदेशों को असार समझते है। 'इससे मेरी बुद्धि तिरस्कृत हो रही है।'' ऐसा मन में समझकर मंत्रियों के उपदेश से द्वेष प्रकट करते हैं, जो हितकारी वचनों को बोलते है उन पर क्रोध करते हैं।

सरलार्थ-

अनुचरों द्वारा की गई विडम्बना में वे राजा उनका ही सादर अभिनन्दन करते हैं। अपने मन में देवत्वसंस्थापन से विवेक हीन होने से उन राजाओं में धारणा उत्पन्न होती है। उससे उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। मेरी दो भुजाओं के मध्य में इनसे भी अलग दो भुजाएँ गुप्त रूप में है। ऐसी भावना करके अपने आपको विष्णु के समान मानते है और भी अपने मस्तक पर एक तीसरा नेत्र त्वचा से ढका हुआ है। ऐसी आशंका करते हुए अपने को शिव अर्थात् महेश्वर के समान मानते हैं। वे अपने दर्शन को उनके प्रति अनुग्रह मानते हैं। अपनी दृष्टिपात को उपकार में गिनते हैं, किसी के साथ वार्तालाप को दान रूप मानते हैं, उनके आदेश वर प्रदान के तुल्य हैं ऐसा सोचते हैं, उनका स्पर्श पवित्रता सम्पादक है ऐसा समझते हैं। मिथ्या माहात्म्य के गर्व से गर्वित राजा देवों को नमस्कार नहीं करते हैं, ब्राह्मणों का पूजन नहीं करते हैं। सम्मानीय जनों का सम्मान नहीं करते हैं, पूजनीय जनों की पूजा नहीं करते, नमस्कार योग्य को नमस्कार नहीं करते हैं, गुरुओं को देखकर खड़े नहीं होते है, वे विद्योपार्जनादि को निरर्थक परिश्रम मानकर पण्डितों का उपहास करते हैं। वृद्धजन वार्धक्य के कारण बुद्धि की अस्थिरतावश अधिक बोलते हैं। ऐसा स्वीकार करते हुए राजा 'वृद्धजनों के उपदेश को निष्प्रयोजक मानते हैं। अपनी बुद्धि का तिरस्कार होता है ऐसा मानते हुए वे राजा मन्त्रियों के उपदेश में दोषों को खोजते हैं और हित वाक्य बोलने वालो पर क्रोध प्रकट करते हैं।

व्याकरण विमर्श

(क) समास

1. **देवताध्यारोपणविप्रतारणासम्भुतसम्भावनोपहता:**- देवता-ध्यारोपणं एवं विप्रतारणा देवताध्यारोपणप्रतारणा इति कर्मधारय:। तया सम्भूता देवताध्यारोपणप्रातारणासम्भूता इति तृतीयातत्पुरुष। तया उपहता: देवताध्यारोपणप्रतारणासम्भूतोपहता: इति तृतीयातत्पुरुषसमास:।

2. **अन्त:प्रविष्टपर भुजद्वयम्** -अन्त: प्रविष्टम् अन्त: प्रविष्टम् इति कर्मधारय:। अपरं भुजद्वयम् अपरभुजद्वयं इति कर्मधारयसमास: अन्त् प्रविष्टम् अपरभुजद्वयम् अन्त: प्रविष्टापरभुजद्वयमिति कर्मधारयसमास:।

3. **मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा:**- मिथ्या एव माहात्म्यं मिथ्यामाहात्म्यम् इति कर्मधारय:। तेन गर्व: मिथ्यामाहात्म्यगर्व: इति तृतीयात्पुरूष:। तेन निर्भरा: मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा: इति तृतीयातत्पुरुषसमास:।

4. **त्वगन्तरिततृतीयलोचनम्** - त्वचा अन्तरितं त्वगन्तरितम् इति तृतीयातत्पुरूष:। त्वगन्तरितं तृतीयलोचनं यस्मिन् स त्वगन्तरिततृतीय लोचन:, तमिति बहुव्रीहिसमास:।

5. **अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखम्** - अनर्थकः आयासः अनर्थकायासः इति कर्मधारयः। तेन अन्तरितम् अनर्थकायासान्तरितम् इति तृतीयातत्पुरुषः। अनर्थकायासान्तरितं विषयोपभोगसुखं येन स, तम् इति बहुव्रीहिसमासः।

6. **जरावैक्लब्यप्रलपितम्** - जरया वैक्लब्यं जरावैक्लब्यम् इति तृतीयातत्पुरुषः। तेन प्रलपितः जरावैक्लब्यप्रलपितः, तम् इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

(ख) संधि- विच्छेद

1. **अप्युपकारपक्षे** - अपि +उपकारपक्षे ।

2. **इत्युपहसन्ति** - इति +उपहसन्ति।

अलंकार

1. मनसा-इस वाक्य में बाहुयुगल का अन्तः प्रवेश क्रिया से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

2. आघ्राम्- इस वाक्य में इवाद्यभावात् से क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है।

पाठगत प्रश्न 19.1

1. राजा किनका अभिनन्दन करते हैं?

2. किनसे राजाओं की बुद्धि नष्ट होती है?

3. वे राजा अपनी आज्ञा को क्या मानते हैं?

4. अविवेकी राजा किनका अभिवादन नहीं करते हैं?

5. राजा किन पर क्रोध करते हैं?

19.2 मूलपाठ

सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्द्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मैं ददति, तं मित्रतामुपनयन्ति, तस्य वचनं श्रृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतम् उपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति। किंवा तेषां साम्प्रतम्, येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातरः उच्छेद्याः।

व्याख्या

वे राजा लोग सभी प्रकार से उनकी ही प्रशंसा करते हैं, उनके साथ ही बातचीत करते हैं, उसको ही पास में रखते हैं, सहायता करके उनकी ही उन्नति करते हैं, उनका ही वचन सुनते हैं, उनको

टिप्पणी

ही सर्वदा धन वितरण करते हैं, उनका ही बहुत आदर करते हैं, और उसी को ही सब प्रकार से विश्वास पात्र बना लेते हैं। जो व्यक्ति दिन-रात अन्य सब काम छोड़ हाथ जोड़ कर उपस्थ देवताओं के समान उनकी स्तुति करता है अथवा जो व्यक्ति हरि हरादिकों का अवतार कह कर उनका माहात्म्य प्रकाश करता है अर्थात् चाटुकारी करता रहता है।

इस प्रकार ये जो नृपति होते हैं उनके सम्पूर्ण अनुचित व्यवहार कहते हैं कि जिनके समीप से अत्यन्त नृशंस उपदेश से परिपूर्ण एवं नितांन्त निर्दय चाणक्य प्रवीण नीतिशास्त्र ही प्रमाण मानने वाले, मारणप्रयोग आदि अभिचार क्रिया का अनुष्ठान से नितान्त क्रूर स्वभाव वाले पुरोहित गण जिनके शिक्षक हैं अर्थात् उन राजाओं के लिए क्या न्यायसंगत है जिनके श्येनयागादि क्रूर कर्म करने वाले पुरोहित गण हों, परप्रस्तारण परायण मंत्रिगण जिनके सलाहकार हैं, हजारों राजाओं ने जिसे भोग कर छोड़ दिया है उस लक्ष्मी के प्रति जिनकी आसक्ति है, मरणोपदोष से परिपूर्ण तंत्रशास्त्र में जिनका आग्रह है, एवं स्वाभाविक स्नेह के कारण सत् चित् और अनुराग करने वाले भ्रातृगण जिनकी जड़ काटते हैं, उन राजाओं के योग्य न्याय संगत कार्य क्या हो सकता है।

सरलार्थ

ये राजा सर्वथा उनको ही पास में बैठाते हैं, उनके साथ ही सुख से निवास करते हैं, उनको ही आदर देते हैं, उनके साथ ही मित्रता करते हैं, उनके ही वाक्यों को सुनते हैं, उनको ही सर्वदा धन वितरित करते हैं, उनका ही सम्मान करते हैं, उनको ही विश्वसनीय मानते हैं जो जन रात-दिन निरन्तर हाथ-जोड़े हुए कर्तव्य कर्मों को अन्यत्र स्थापित करके देववत् राजाओं की स्तुति करते हैं अथवा उनके माहात्म्य का कीर्तन करते हैं।

इस प्रकार के राजाओं का न्याय-संगत कार्य क्या हो सकता है अर्थात् कुछ नहीं। जिनके समीप में अत्यन्त नृशंस उपदेशों से परिपूर्ण तथा नितान्त निर्दय चाणक्यप्रणीत नीतिशास्त्र ही प्रमाण होता है। अभिचार क्रिया के अनुष्ठान के लिए नितान्त क्रूरस्वभाव विशिष्ट पुरोहित जिनके शिक्षक हैं, दूसरों को पीड़ित करने में निपुण मंत्रिगण जिनके उपदेशक हैं हजारों राजा जिस लक्ष्मी को अपनी इच्छानुसार भोग करके छोड़ चुके हैं। उस लक्ष्मी के प्रति जिनकी आसक्ति है। मरणोपदेश परिपूर्ण तन्त्रशास्त्र में जिनका आग्रह है। प्रकृति से स्नेहवश सत् चित्त और अनुरक्त भ्रातृगण जिनके भेदक होते हैं।

व्याकरण विमर्श

(क) समास-

1. **उपचिताञ्जलिः** - उपचिता अञ्चलिः येन सः उपचिताञ्जलिः इति बहुव्रीहिसमासः।
2. **विगतान्यकर्तव्यः** - विगतम् अन्यत् कर्तव्यं यस्य सः विगतान्यकर्तव्यः इति बहुव्रीहिसमासः।
3. **कौटिल्यशास्त्रम्** - कौटिलस्य शास्त्रं कौटिल्यशास्त्रम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

(ख) संधि- विच्छेदः -

1. शास्त्रेष्वभियोगः शास्त्रेषु + अभियोगः।

टिप्पणी

अलंकार विमर्श

सर्वथा इत्यादि वाक्य में दुष्ट राजाओं का सर्वकार्या-यौक्तिकत्वनिरुपण कार्य के प्रति अनेक हेतुपन्यास होने से समुच्यय अलंकार है, जिसका लक्षण साहित्यदर्पण में-

समुच्चयोऽयमेकस्मिन् सति कार्यस्थ साधके।
खले कपोतिकान्यायात् तत्करः स्यात् परोऽपि चेत्॥

कोश-''यक्तं द्वे साम्प्रतं स्थाने'' इत्यमरवचनात् साम्प्रतमित्यस्य युक्तम् इत्यर्थः।'' इति विश्वः।

पाठगत प्रश्न 19.2

6. मोहग्रस्त राजा सर्वथा किसको पास में रखते है?

7. वे राजा किसके साथ बैठते है?

8. अन्यायकारी राजा के उपदेशक कौन है?

19.3 मूलपाठ

तदेवं प्रायातिकुटिल-कष्ट-चेष्टा-सहस्रदारुणे राज्यतन्त्रे, अस्मिन् महामोहकारिणि च यौवने, कुमार! तथा प्रयतेथाः यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः। यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रहस्यसे कुशलैः, नास्वाद्यते भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः न वञ्च्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः, तरलहृदयमप्रतिबुद्ञ्च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषों मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे, विद्वांसमपि सचेनमपि महासत्त्वमप्यीाजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति।

व्याख्या

इसलिए हे राजकुमार चन्द्रापीड़ ऐसी हजारों अत्यन्त जटिल और कष्टपद कार्य बाहुल्य से भयंकर राज्यशासन के व्यवहार में एवं ऐसे महामोहवश विवेक शून्यकारी इस यौवन काल में तुम ऐसा कार्य करने का प्रयत्न करो कि जिसमें मनुष्य तुम्हारी हँसी न करें, साधुगण निन्दा न करें। गुरुजन धिक्कार न दे, मित्रगण उलाहना न दे एवं विद्वानगण शोक न करें, कामीजन तुम्हारी बुराई न करें, कार्यदक्ष लोग तुम्हारा उपहास न करें, लंपटलोग तुम्हारी सम्पत्ति का भोग न करें, भृत्यरूपी भेड़िये तुम्हार सम्पत्ति को लूट न ले जाये, धूर्तगण धोखा न दें, स्त्रियां लालच में न आवे। लक्ष्मी तुम्हें विडम्बित न करें, अहंकार तुम्हें न नचावे, कामदेव तुम्हें उन्मत व पागल न करें, विषय बुरे मार्ग पर न ले जा सकें, किसी विषय की उत्कृष्ट अभिलाषा न हो, और अपने अधीन न कर ले।, माना कि तुम स्वभाव से अत्यन्त धैर्यवान् हो और पिताजी ने बड़े-बड़े

उद्योग करके तुमको सभी विषयों का ज्ञान कराया है एवं धन सम्पत्ति भी चंचल चित्त वाले और अभुक्त भोगी जनों को स्वभाव से ही उन दुरुह कार्यों में प्रवृत्त कराती है तथापि तुम्हारी विद्या विनय और गुण जनित संतोष ने ही मुझे इस रुप में कहने के लिए प्रेरित किया है और यह मैं तुमको बार-बार कहता हूँ कि मनुष्य चाहे जैसा विद्वान् विवेचक, बलवान, कुलीन, धीरप्रकृति एवं उद्योगी हो उसे भी यह दुराचारिणी लक्ष्मी दुर्जन बना देती है।

सरलार्थः

इस कारण से हे राजकुमार चन्द्रापीड़, अत्यन्त जटिल कष्टप्रद कार्यबहुल भीषण राज्यशासन कर्तव्य में वैसे विवेकशून्यकारी यौवन के समय उस प्रकार से कर्म करना चाहिए। जिससे लोग उपहास न करें, सन्त निंदा न करें, आचार्य धिक्कार न करें, मित्र तिरस्कार न करें, पण्डित शोक न करें, कामीजन काम प्रकट न करें, निपुण उपहास न करें, लम्पट सम्पत्ति को न भोगें, सेवक धन न हरें, धूर्त न ठगें, स्त्री विलास से मुग्ध न हो, श्री न त्यागें, अभिमान न ग्रसें, कन्दर्पबाण से न मारें, विषय आसक्त न करें, किसी वस्तु भोग से इच्छा न हो, आनन्द न छोड़ें इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए।

स्वभाव से तुम धीर प्रकृति हो, पिता तारापीड़ ने तुममें संस्कार स्थापित किये है। सम्पत्ति ही तारुण्य चंचलचित को राज्य शास्त्ररिपुविजयादि में अनभिज्ञ को उन्मत्त करती है फिर भी तुम्हारा विद्या विनय शौर्य आदि गुणों से उत्पन्न तुष्टि मुझे सन्तुष्ट करती है। अतः बार-बार करता हूँ कि गुणवान को, सावधान को, शक्तिवान को, सद्वंशज को, धीरस्वभाव को, उद्योग युक्त जन को भी यह दुष्ट लक्ष्मी दुर्जन करती है।

व्याकरण विमर्श

(क) समास :-

1. **सेवकवृकैः** - सेवकाः वृकाः सेवकवृकाः इति कर्मधारयसमासः, तैः सेवकवृकैः इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

2. **प्रायातिकुटिल-कष्ट-चेष्टा-सहस्रदारुणे- प्रायाः** अतिकुटिलाः प्रायातिकुटिलाः इति कर्मधारयः। प्रायातिकुटिलाः कष्टचेष्टाः प्रायोतिकुटिलकष्टचेष्टाः इति कर्मधारयः। तासां सहस्रं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रम् इति षष्ठीतत्पुरुषः। ततः दारुणं प्रायोतिकुटिलकष्टचेष्टा सहस्रदारुणम्, तस्मिन् इति पञ्चमीतत्पुरुषः।

3. **महासत्त्वम्** - महत् सत्त्वं यस्य स महासत्त्वः, तम् इति बहुव्रीहिः।

(ख) संधि-विच्छेद -

1. **नास्वाद्यते**- न +आस्वाद्यते।

2. **नोन्मत्तीक्रियसे** - न+ उन्मत्तीक्रियसे।

3. **नावकृष्यसे** - न+ अवकृष्यसे।

4. **पुनरभिधीयसे**- पुनः+ अभिधीयसे।

टिप्पणी

अलंकार विमर्श-तदेवम् इस वाक्य में रूपक अलंकार है।

पाठगत प्रश्न 19.3

9. किस राज्यतंत्र में राजा लोभी न हो?
10. शुकनास की नीति में चन्द्रापीड कैसा है?
11. शुकनास की नीति में किस के द्वारा राजकुमार निन्दित न हो?
12. चन्द्रापीड पर किसने संस्कार आरोपित किये?
13. राजकुमार के गुणों को किसने मुखर किया?
14. कैसे सज्जन दुर्जन होता है?

19.4 मूलपाठ

सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान् नवयौवराज्याभिषेकमंगलम्, कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढ़ा धुरम् अवनमय द्विषतां शिरांसि, उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरञ्च प्रारब्ध दिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयञ्च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशों भवति इतयेतावदभिध ायोपशशाम।

व्याख्या

पिता द्वारा किये गये मांगलिक नवयौवराज्याभिषेक का तुम सब कल्याणों के साथ सर्वथा सुख का अनुभव करो। तुम्हारे पूर्व पुरुषों से जो भार वहन किया गया है, तुम भी इस कुल क्रमागत पृथ्वी के शासन के भार को वहन करो। शत्रुओं का मस्तक नीचा करो एवं बन्धुवर्ग को उन्नत करो एवं सप्तद्वीप रूपी भूषण वाली पृथ्वी को तुम्हारे पिता द्वारा जीत कर रखी रहने पर भी इसे अभिषेक हो जाने के बाद दिग्विजय आरम्भ कर सर्वत्र भ्रमण करते हुए तुम भी फिर से जीतो। यह तुम्हारे प्रताप विस्तार करने का समय है क्योंकि राजा का प्रताप उत्पन्न होने पर सर्वत्र महायोगी के समान उसका आदेश सर्वत्र ही सफल होकर रहता है। इतना कह कर शुकनास चुप हो गया।

सरलार्थ

आप मंगलों के साथ पिता द्वारा विद्यीयमान युवराजपदाभिषेक के सुख का अनुभव करो, परम्परा से प्राप्त पूर्व पुरुषों द्वारा धारित राज्यशासन के भार को वहन करो, शत्रुओं का सिर नीचे करो, अपने समुदाय की उन्नति करो, अभिषेकोपरान्त आपके पिता द्वारा जीते जम्बु आदि सप्तद्वीपों से भूषित पृथ्वी के दिग्विजय के लिए बाहर जाते हुए आप पुन अधीन करो यह शत्रुओं में पराक्रम दिखाने का समय है, शत्रुओं में राजा के उन्नत प्रताप के होने पर उसके आदेश सर्वज्ञ

के समान पालित होते हैं। इस प्रकार इतना कह कर शुकनास रुक गया।

व्याकरण विमर्श

(क) समास-

1. **नवयौवराज्याभिषेकमंगलम्** - नवं यौवराज्यं कर्मधारयसमास:, तस्मिन् अभिषेक: नवयौवराज्याभिषेक: इति सप्तमीतत्पुरुषसमास:, तस्य मंगलम् नवयौवराजयाभिषेकमंगलम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:।

2. **स्वबन्धुवर्गम्** - स्वस्य बन्धु: स्वबन्धु: इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:, स्वबन्धुगर्व: इति षष्ठीतत्पुरुसमास: तं स्वबन्धुवर्गम्।

3. **सप्तद्वीभूषणाम्** - सप्त द्वीपानि सप्तद्वीपानि इति कर्मधारयसमास:, सप्तद्वीपानि एवं भूषणं यस्या: सा सप्तद्वीपभूषणा इति बहुव्रीहिसमास:, तां सप्तद्वीभूषणाम्।

4. **आरुढ़प्रताप:** - आरूढ़: प्रताप येन स: आरूढ़प्रताप: इति बहुव्रीहिसमास:।

(ख) संधि-विच्छेद -

1. **इत्येतावत्** - इति +एतावत्।

2. **अभिधायोपशशाम**- अभिधाय+ उपशशाम।

कोश-1 ''स प्रताप: प्रभावश्च यत्तेज: कोषदण्डजम्।'' इत्यमरवचनात् प्रताप:, प्रभाव:, कोषदण्डजं तेज: इत्येते पर्याया:।

पाठगत प्रश्न 19.4

15. मन्त्रिमत में राजकुमार क्या अनुभव करें?

16. राजकुमार मंत्रीच्छा के अनुसार क्या झुकायें।?

17. राजकुमार किसकी पुन: विजय करे?

18. किस राजा का आदेश देववत् सिद्ध होता है?

19.5 मूलपाठ

उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भि: प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्त्त स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।

व्याख्या

शुकनाश के उपदेश वचन समाप्ति के उपरान्त चन्द्रापीड की स्थिति का वर्णन है - शुकनास के मौन हो जाने पर उन निर्मल शिक्षा वचनों से धुला सा, स्नान किये हुए के समान, चन्दन आदि के लेप किये हुए के समान, आभूषित किये गये के समान पवित्र किये के समान और उज्ज्वल किये के समान प्रीतहृदय प्रसन्नचित होकर चन्द्रापीड़ कुछ समय के लिए ठहरकर अपने भवन में लौट आया।

सरलार्थ

शुकनास के उपदेशानंतर चन्द्रापीड उपदेश के निर्मल वचनों से धुला सा, प्रबुद्ध, स्वच्छ, अभिषिक्त, अभिलिप्त, भूषित पवित्र उज्ज्वल के समान अनुभव करके प्रसन्नचित होता हुआ कुछ क्षण ठहर कर अपने भवन में आ गया।

व्याकरण विमर्श

(क) समासः -

1. **उपशान्तवचसि** - उपशान्तं वचः यस्य स उपशानतवचाः, तस्मिन् इति बहुव्रीहिसमासः।
2. **प्रीतहृदयः** - प्रीतं हृदयःयस्य स इति बहुव्रीहिसमासः।
3. **स्वभवनम्** - स्वस्य भवनं स्वभवनम् इति षष्ठीतत्पुम्षसमासः।

(ख) संधिविच्छेदः -

1. **चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भिः**- चन्द्रापीडः+ ताभिः+ उपदेशवाग्भिः।

अलंकार विमर्श

1. उपशान्त इस वाक्य में नवीन उत्प्रेक्षा की अनपेक्षा से संसृष्टि अलंकार है। उसका लक्षण विद्यानाथ ने कहा-

तिलतण्डुलसंश्लेषन्यायाद् य= परस्परम्।
संश्लिष्येयुरलंकाराः सा संसृष्टिर्निगद्यते॥

पाठगत प्रश्न 19.5

19. राजकुमार चन्द्रापीड कब भवन लौट आया?
20. राजकुमार किससे पवित्रकृत के समान भवन आया?
21. चन्द्रापीड कैसे भवन आया?
22. राजकुमार क्या करके भवन लौट आया?

टिप्पणी

पाठसार

झूठे स्तुति वचनों से विह्वल राजा सेवकों द्वारा की गई विडम्बना में उन धूर्तो का अन्धे के समान सादर अभिनन्दन करते हैं। अतः उनके मन में ऐसी धारणा होने से उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। मेरी दो भुजाओं में इनसे भी अधिक दो अन्य भुजा, गुप्त रूप से है। ऐसी भावना करके स्वयं को विष्णु के समान मानते हैं। अपने ललाट में तीसरा एक नेत्र त्वचा से ढका हुआ है। ऐसी आशंका करते हुए वे स्वयं को शिव अर्थात् महेश्वर के समान मानते हैं। उनका दर्शन देना लोगों पर अनुग्रह है। ऐसी भावना करते हैं। अपनी दृष्टि को उपकार के रूप में गिनते है, किसी के साथ वार्तालाप करने को दान के समान, अपने आदेश को वरदान के समान, सोचते है, अपने स्पर्श को पवित्रता सम्पादक के समान समझते है, मिथ्या माहात्म्य के गर्व से गर्वित राजा देवताओं को नमस्कार नहीं करते हैं, ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते, सम्माननीय के लिए सम्मान प्रदर्शन नहीं करते है, पूजनीयों की पूजा नहीं करते हैं, नमस्कार योग्य को नमस्कार नहीं करते है, और भी गुरुओं को देखकर भी नहीं उठते हैं, विद्योपार्जन आदि को निरर्थक परिश्रम मानकर पण्डितों का उपहास करते हैं, वृद्ध वार्धक्य के कारण से बुद्धि की अस्थिरतावश अधिक बोलते है ऐसा स्वीकार करते हुए उन वृद्धों के उपदेश को निष्प्रयोजन करते हैं। अपनी बुद्धि का तिरस्कार होता है ऐसा मानते हुए वे राजा मन्त्रियों के उपदेशों में दोष खोजते हैं और हितवाक्य बोलने वालों पर क्रोध प्रकट करते हैं।

ये राजा सर्वथा उन्ही के पास स्थापित होते है, उनके साथ ही सुख से निवास करते है, उनको ही आदर देते हैं, उनके साथ ही मित्रता करते हैं, उनको ही धन वितरित करते है, उनका ही सम्मान करते हैं, उनको ही विश्वसनीय मानते हैं- जो लोग रात-दिन निरन्तर हाथ जोड़ते हुए, कर्त्तव्य कर्मो को अन्यत्र स्थापित करके देवता के समान राजाओं की स्तुति करते हैं अथवा उनके माहात्म्य को कीर्तन करते है, जिनके समीप में अत्यन्त नृशंस उपदेशों से परिपूर्ण तथा नितान्त निर्दय चाणक्य प्रणीत नीतिशास्त्र को प्रमाण मानते है। ऐसे अभिचार किया से अनुष्ठान के लिए नितान्त क्रूर स्वभाव विशिष्ट पुरोहित इनके शिक्षक हैं। दूसरों को दुःख देने में परायण मंत्री इनके उपदेष्टा होते हैं।

हजारों राजा जिस लक्ष्मी का परित्याग कर चुके हैं उस लक्ष्मी में आसक्ति है। मारणोपदेश से परिपूर्ण तन्त्र शास्त्र में जिनका आग्रह है प्रकृति से स्नेहवश सत् चित्त और अनुरक्त भातृगण जिनके भेदक पत्र है। उस प्रकार के राजाओं का कौन सा कार्य न्याय-संगत हो सकता है। अर्थात् न्याय-संगत नहीं हो सकता।

इस कारण से शुकनास चन्द्रापीड को कहते हैं कि इस प्रकार कष्टप्रद भयंकर राजशासन कर्तव्य में विवेकनाशी यौवन समय में उस प्रकार के कर्म तुम्हारे द्वारा किये जाने चाहिए जिससे लोग तुम्हारा उपहास न करें, सन्त निंदा न करें, आचार्य धिक्कार न करें, मित्र तिरस्कार न करें, पण्डित न सोचे, कामीजन अपनी समानता से प्रकट न करे, कार्यनिपुण उपहास न करें, लम्पट सम्पति का भोग न करें, सेवक धन को न हरें, धूर्त न ठगें, स्त्री अपने विश्वास से मुग्ध न करें, श्री तुम्हारा परित्याग न करें, अभिमान तुम्हें ग्रसित न करे, कामदेव अपने वाणी से न मारे,

विषय आसक्त न करें, किसी भी वस्तु के उत्कट भोगच्छा से तुम प्रवर्तित न हो, आनन्द तुम्हारा परित्याग न करे, ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए।

शुकनास के अनुसार मंगल के साथ पिता तारापीड़ द्वारा किये गये अभिषेक के सुख का अनुभव करो, कुल क्रमागत राज्यशासन के भार को वहन करो, शत्रुओं के सिर को नीचा करो, स्वजनों की उन्नति करो, अभिषेकानन्तर पिता द्वारा विजित प्रदेशों को पुनः जीत कर अपने अधीन करो, शत्रुओं में पराक्रम दिखाओ आपके आदेश की पालना सर्वज्ञ के समान हो इस प्रकार कहकर शुकनास चुप हो गया।

शुकनासोपदेशानंतर चन्द्रापीड़ उन निर्मल उपदेशों से परिष्कृत, प्रबोधित, अभिषिक्त, भूषित पवित्र, उज्जवल सा हो गया और प्रीतहृदय होकर भवन को लौट आया।

आपने क्या सीखा

- उपदेशों का महत्त्व।
- राजाओं द्वारा प्रजा के प्रति आचरण कैसे करना चाहिए जाना।

पाठन्त प्रश्न

1. किस कारण से राजा प्रवञ्चकों का सादर अभिनन्दन करते है? वर्णन कीजिए।
2. विवेकहीन होकर राजा क्या-क्या करते है? वर्णन कीजिए।
3. मिथ्यामोहग्रस्त राजा किसको पास बैठाते हैं?
4. कैसे राजा के कार्य न्यायसंगत नहीं होते हैं?
5. शुकनासानुसार राजकुमार कैसा आचरण करे?
6. कब राजा का आदेश सर्वज्ञ के समान होता है?

पाठगत प्रश्नो के उत्तर

19.1

1. राजा आत्मविडम्बना करने वालों का अभिनन्दन करते हैं।
2. अपने में देवताओं का आरोपधारणा से दुष्ट राजाओं की बुद्धि नष्ट होती है।
3. अविवेकी राजा अपनी आज्ञा को वर प्रदान मानते हैं।
4. अविवेकी राजा अभिवादन योग्य का अभिवादन नहीं करते है।

5. अविवेकी राजा हितकारी मानने वालो पर क्रोध प्रकट करते हैं।

19.2

6. मोहग्रस्त राजा रात-दिन हाथ जोड़ स्तुति करने वालों को अपने पास में रखते हैं।
7. वे राजा जो उसके माहात्म्य को कहते है, उसके साथ सुख से बैठते हैं।
8. पराभिसन्धाानपरा मन्त्री अन्यायकारी राजा के उपदेशक हैं।

19.3

9. अत्यन्त भयंकर कष्टप्रद कुटिल राजतन्त्र में राजा प्रलोभी न हों।
10. शुकनास की नीति में चन्द्रापीड़ स्वभाव से ही धीर है।
11. शुकनास की नीति में साधुओं द्वारा राजकुमार निन्दित न हों।
12. राजकुमार पर पिता तारापीड़ ने संस्कार आरोपित किये।
13. राजकुमार के गुण मंत्री शुकनास ने मुखर किये।
14. दुर्विनीत लक्ष्मी से सज्जन दुर्जन होता है।

19.4

15. मन्त्री के मत में राजकुमार मंगल का अनुभव करे।
16. राजकुमार मंत्रीच्छानुसार शत्रुओं के सिर नीचे झुकाये।
17. राजकुमार सप्तद्वीपभूषित वसुमती पर पुनः विजय करें।
18. आरुढ़प्रताप राजा के आदेश देववत् सिद्ध होते है।
19. राजकुमार शुकनास के उपदेश के बाद भवन लौट आया।

19.5

20. राजकुमार निर्मल उपदेश वाणी से पवित्रकृत के समान भवन लौट आया।
21. चन्द्रापीड़ प्रसन्नचित होकर भवन लौट आया।
22. राजकुमार क्षणभर स्थित होकर भवन लौट आया।

टिप्पणी

योग्यता विस्तार

कवि परिचय

भूमिका

महाकवि बाणभट्ट गद्य काव्य जगत के चक्रवर्ती सम्राट है। ''पद्यं वद्यं गद्यं हृद्यम् यह उक्ति बाण के गद्यकाव्य के रचना के बाद में भणितिपदती को प्राप्त हुए। कविराज नाम का एक गद्य कवि कहता है कि सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ''इस श्लेषार्थ चमत्कार में हम तीन गद्य कवि मानते हैं। बाणभट्ट के कविता सामर्थ्य विचार पर गोवर्धनाचार्य का प्रशंसावचन इस प्रकार है- जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।

प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणे बभूवे॥
महाकवि जयदेव कहते है कि
-हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः॥

देशकाल

महाकवि द्वारा अपने इतिवृत का स्वविरचित हर्षचरित में विस्तार से प्रतिपादित किया गया। हिरण्यबाह्वपरनामिका शोणनदी के पश्चिम तट पर स्थित प्रीतिकूट ग्राम बाण की जन्मभूमि थी।

इस समय यह स्थान बिहार राजा के आरा मण्डल के अन्तर्गत है। बाणभट्ट का वंश विद्याभ्यास और धर्माचरण में अतीव प्रसिद्ध था। वात्स्यायनवंशज चित्रभानु बाणभट्ट के पिता और राज्यदेवी माता थी। एक उक्ति भी प्राप्त होती है - 'अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राज्यदेव्यभिधनायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्' अतः इससे निश्चय होता है कि ये ब्राह्मण थे। बाण के जन्म स्थान के पास ही यष्टिगृह नाम का ग्राम था उससे थोडी दूर पर श्री हर्षवर्धन के द्वितीय शिलादित्य का राज्य श्रीकण्ठदेश था। हर्षवर्धनशिलादित्य का समय 606 से 647 ईसवी हर्षचरित में उल्लेखित है। अतः बाणभट्ट का भी समय सातवी शताब्दी है यह स्पष्ट है।

जीवन चरित - शिशु अवस्था में ही बाण का मातृवियोग हो गया। उसके बाद पिता ने ही बालक का रक्षण भरण पोषण का भार वहन किया। उसके बाद समुचित अवस्था में उसके विधिवत उपनयादि संस्कार सम्पन्न हुए। उसने पिता से सम्पूर्ण विद्या प्राप्त की। बाण की चौदह वर्ष की आयु में पिता का देहावसान हो गया। उसके बाद खिन्न बाण मित्रों के साथ ग्राम से ग्राम घूमता हुआ अन्त में प्रीतिकूट पहुँचा। वहाँ पर ही उसका कवित्व विकास प्रकट हुआ। उसके दो भाई चन्द्रसेन और मातृसेन प्रसिद्ध हैं। उसके बाद उसकी कवित्व प्रतिभा कानों की कानों बहुत प्रसिद्ध हुई। एक बार उसकी कवित्व प्रतिभा को सुनकर चक्रवर्ती हर्षवर्धन के मामा चित्रभानु के मित्र कृष्णराज मुग्ध हो गये। उसकी कृपा से उसने हर्षवर्धन की आस्थान पण्डित मण्डली में स्थान प्राप्त किया। उसके कुछ समय बाद बाणभट्ट हर्षवर्धन के अतीव प्रियमित्र हो गये। तब बाण ने हर्षवर्धन के जीवनचरित पर आश्रित हर्षचरित नामक ग्रन्थ की रचना की। भूषणभट्ट बाणभट्ट का पुत्र था।

टिप्पणी

कृति

महाकवि बाणभट्ट ने दो गद्य काव्यों के निर्माण से सहृदयों के हृदय में अमर स्थान प्राप्त किया। अतएव काव्य रसिकों का यह उद्घोष है- ''बाणोच्छिष्टम् जगत् सर्वम्'' है। उसके दो गद्य काव्य है- 1. हर्षचरितम्-2 और कादम्बरी।

उनमें से हर्षचरिम् आख्यायिका ग्रन्थ है। वास्तविक इतिहास पर आश्रित यह ग्रन्थ बाणभट्ट ने विरचित किया। इस ग्रन्थ की आख्यायिकात्व के विषय में स्वयं बाण यह कहते है- ''करोम्याख्यायिकाम्भोधौ विह्वाप्लवनचापलम्''। यह न ही साधारण चरित पुस्तक है, अपितु सरस काव्य है। गद्य के विषय में आलंकारिको में कहा है- ''ओज: समासभूयस्त्वम् एतद् गद्यस्य जीवितम्''। इन आलकांरिको के मत में ओज समास बहुल गद्य काव्य संरचना में बाणभट्ट मूर्धन्य हैं। हर्षचरित ओज समास बहुल गद्य काव्य है। इस ग्रन्थ में आठ उच्छ्वास हैं। उनमें से प्रथम तीन उच्छवासों में बाण ने अपनी कथा लिखी है। चौथे उच्छवास से अन्तिम उच्छवास तक राजा हर्षवर्धन के चरित का उपन्यास किया है।

बाणभट्ट का द्वितीय प्रसिद्ध गद्यकाव्य कादम्बरी है। अपनी कल्पना से रचित कादम्बरी कथाग्रन्थ है। बाण ने अपनी कृति में कहा - धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा''। कादम्बरी की कथा गुणाढ्य विरचित बृहत्कथा से संग्रहीत है। महाकवि बाण ने बृहत्कथा से कथा लेकर अपनी कवित्व प्रतिभा से काव्य कला निपुणता से कथा में विशिष्टता उत्पन्न करके कादम्बरी की रचना की। अतएव रसिक जन कहते हैं– ''कादम्बरीरसज्ञानाम् आहारोखपि न रोचते'' कादम्बरी अपने वैभव से अन्वर्थनाम से कादम्बरी सम्पन्न हुई। कादम्बरी मदिरा का भी नाम है। जैसे मदिरा मद को उत्पादन करती है। उसी प्रकार यह कथा भी काव्यास्वादनरूप मद को उत्पन्न करती है। विद्वानों एवं आलंकारिको द्वारा बाण की कादम्बरी की महती प्रशंसा की गई हैं। उनमें से राजशेखर कहते है -सहर्षचरितारब्धाद्भुत कादम्बरीकथा।

बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमतिक्षितौ॥

उसी प्रकार कीर्तिकौमुदीकार कहते हैं -युक्तं कादम्बरी श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिता:।

बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यत:॥

इस प्रकार संक्षेप से कविपरिचय प्रस्तुत किया।

विशेषज्ञान के लिए अध्येतथ्य ग्रन्थ

बाणभट्ट प्रणीत यह कादम्बरी कथा ग्रन्थ भारतीय संस्कृत साहित्य में अत्युत्कृष्ट पद को अलंकृत करती है। यह ग्रन्थ बहुत से लोगों द्वारा परम आदर से श्लाघ्य है। यहां शुकनासोपदेश अंश हमने पढ़ा। वहाँ अध्येता यदि इससे भी अधिक ज्ञान चाहता है तो अधोलिखित ग्रन्थों को देख सकता है।

कादम्बरी- चन्द्रकला संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेता

टिप्पणी

व्याख्याकार- आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मीः

प्रकाशक चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, उ-प्र-।

कादम्बरी- चन्द्रकलाविद्योतिनीव्याख्याश्योपेता

व्याख्याकार- पण्डित कृष्ण मोहनशास्त्री

प्रकाशक -चौखम्बा संस्कृत संस्थान - वाराणसी

कादम्बरी- (बंगभाषायाम्)

सम्पादक- श्रीनीरदवरणभट्टाचार्यः

प्रकाशक- संस्कृत पुस्तक भण्डार कोलकाता

भाषा विस्तार

शुकनासोपदेश इस अंश को पढने से निश्चित ही संस्कृत भाषा का ज्ञानवर्धन होगा। अध्येयाशं के अध्ययन से ज्ञानवर्धन के कुछ उपायों का सामान्य निर्देश दिया गया है-

शुकनासापदेश इस पाठ्यांश के अध्ययन से आप-

1. संस्कृत में गद्य साहित्य रचना कौशल को जान सकते हैं।
2. नवीन पदों की तालिका निर्माण कर सकते हैं।
3. समासों के नाम उनके प्रयोग कौशल को जान सकते हैं।
4. नवीन धातुओं, प्रकृति और प्रत्ययों का प्रयोग कर सकते हैं।
5. नवीन पदों और अर्थों के ज्ञान से भाषा समृद्धि कर सकते हैं।

भाव विस्तार

1. इस कथा को गद्य रूप से पढ़ने और पढ़ाने के लिए समर्थ होते हैं।
2. नाटक रूप में इस कथा को प्रस्तुत कर सकते हैं।
3. धनपिपासा मरने का बीज है इस उपदेश को मन में स्थापित करके जीवन में प्रवृत करो।
4. गुरुओं की आज्ञा विचारणीय होती है।
5. गुरुजनों एवं सज्जनों का सदैव सम्मान करना चाहिए।
6. गुरु की आज्ञा और उपदेश को स्वीकार करके कार्य करने चाहिए।
7. शुकनास के उपदेश को मन में रखकर जीवन परिपालन सरल होता है।
8. कभी भी धनयौवनादि के आधार पर अहंकार नहीं करना चाहिए।